गोरा
अध्याय 1

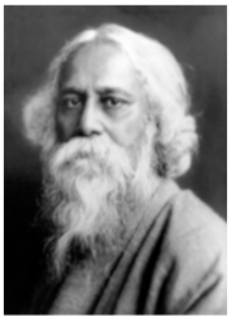

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 1

https://www.hindiadda.com/gora-part-i/

वर्षाराज श्रावण मास की सुबह है, बादल बरसकर छँट चुके थे, निखरी चटक धूप से कलकत्ता का आकाश चमक उठा है। सड़कों पर घोड़ा-गाड़ियाँ लगातार दौड़ रही हैं, फेरी वाले रुक-रुककर पुकार रहे हैं। जिन्हें दफ्तर, कॉलेज और अदालत जाना है उनके लिए घर-घर मछली-भात-रोटी तैयार की जा रही है। रसोईघरों से अंगीठी जलाने का धुआँ उठ रहा है। किंतु तब भी इस इतने बड़े, पाषाण-हृदय, कामकाजी शहर कलकत्ता की सैकडों सड़कों-गलियों के भीतर स्वर्ण-रश्मियाँ आज मानो एक अपूर्व यौवन का प्रवाह लिए मचल रही है।

विनयभूषण ऐसे दिन फुरसत के समय अपने मकान की दूसरी मंज़िल के बरामदे में अकेला खड़ा नीचे राह चलने वालों को देख रहा था। उसकी कॉलेज की पढ़ाई बहुत दिन हुई पूरी हो चुकी थी, पर संसारी जीवन से अभी उसका परिचय नहीं हुआ था। सभा-समितियों के संचालन और समाचार-पत्रों में लिखने की ओर उसने मन लगाया था, किंतु उसका मन उसमें पूरा रम गया हो, ऐसा नहीं था। इसी कारण आज सबेरे 'क्या किया जाए' यह सोच न पाने से उसका मन बेचैन हो उठा था। पड़ोस के घर की छत पर न जाने क्या लिए तीन-चार कौए काँव-काँव कर रहे थे, और उसके बरामदे के एक कोने में घोंसला बनाने में व्यस्त चिड़ियों का जोड़ा चहचहाकर एक-दूसरे को उत्साह दे रहा था- ऐसे ही अनेक अस्फुट स्वर विनय के मन में एक मिश्रित भावावेग जगा रहे थे।

पास की एक दुकान के सामने गुदड़ी लपेटे हुए एक फकीर खड़ा होकर गाने लगा :

खाँचार भितर अचिन् पाखि कमने आसे याय

धारते पारले मनोबेड़ि दितेम पाखिर पाय।

विनय का मन हुआ, फकीर को बुलाकर अनपहचाने पाखी का यह गान लिख ले। किंतु बड़े तड़के जैसे जाड़ा लगते रहने पर भी चादर खींचकर ओढ़ लेने का होश नहीं रहता, वैसे ही एक अलस भाव के कारण न तो फकीर को बुलाया गया, न गान ही लिखा गया; केवल अनपहचाने पाखी का वह स्वर मन में गूँजता रह गया।

उसके घर के ठीक सामने अचानक ही एक बग्घी एक घोड़ागाड़ी से टकराकर उसका एक पहिया तोड़ती हुई, बिना रुककर तेज़ी से आगे निकल गई। घोड़ागाड़ी पलटी तो नहीं, पर एक ओर को लुढ़क गई।

तेज़ी से सड़क पर आकर विनय ने देखा, गाड़ी से सत्रह-अठारह वर्ष की एक लड़की उतर पड़ी है और भीतर से एक अधेड़ वय के भद्र-पुरुष को उतारने का प्रयत्न कर रही है।

सहारा देकर विनय ने भद्र-पुरुष को उतारा तथा उनके चेहरे का रंग उड़ा हुआ देखकर पूछा, "चोट तो नहीं आई?"

"नहीं-नहीं, कुछ नहीं हुआ", कहते हुए उन्होंने हँसने का प्रयत्न किया, पर वह हँसी तुरंत विलीन हो गई और वह मूच्छित होते-से जान पड़े। विनय ने उन्हें पकड़ लिया और घबराई हुई लड़की से कहा, "यह सामने ही मेरा घर है, भीतर चलिए!"

वृध्द को बिछौने पर लिटा दिया गया। एक बार लड़की ने चारों ओर देखा कमरे के एक कोने में सुराही रखी थी- जल्दी से उसने सुराही से गिलास में पानी उँड़ेलकर वृध्द के मुँह पर छींटे दिए और आँचल से पंखा झलती हुई विनय से बोली, "क्यों न किसी डॉक्टर को बुला लिया जाए?"

डॉक्टर पास ही रहते थे; उन्हें बुलाने के लिए विनय ने बैरे को भेज दिया। कमरे में एक ओर मेज़ पर आईना, तेल की शीशी और बाल सँवारने का सामान रखा थ। लड़की के पीछे खड़ा विनय स्तब्ध भाव से आईने की ओर देखता रहा।

बचपन से ही विनय कलकत्ता में घर पर ही पढ़ता-लिखता रहा है। संसार से उसका जो कुछ परिचय है वह सब पुस्तकों के द्वारा ही है। पराई भद्र स्त्रियों से उसका कोई परिचय नहीं हुआ।

आईने की ओर टकटकी लगाए हुए ही उसने सोचा, जिस चेहरे का प्रतिबिंब उसमें पड़ रहा है वह कितना सुंदर है। चेहरे की प्रत्येक रेखा को अलग करके पहचाने, इतना अनुभव उसकी आँखों को नहीं था। केवल उद्विग्न स्नेह से झुके हुए तरुण चेहरे की कोमलता-मंडित स्निग्ध कांति, सृष्टि के एक सद्य:प्रकाशित विस्मय-सी विनय की आँखों में बस गई।

थोड़ी देर बाद ही धीरे-धीरे वृध्द ने आँखें खोलते हुए 'माँ' कहकर लंबी साँस ली। लड़की की आँखें डबडबा आईं। वृध्द के चेहरे के पास मुँह लाकर झुकते हुए उसने द्रवित स्वर से पूछा, "बाबा, कहाँ चोट लगी है?"

"यह मैं कहाँ आ गया?" कहते हुए उठ बैठने का प्रयत्न करते वृध्द के सामने आकर विनय ने कहा, "उठिए नहीं.... आराम से लेटे रहिए, डॉक्टर आ रहा है।"

तब सारी घटना उन्हें याद आ गई और उन्होंने कहा, "सिर में यहाँ थोड़ा दर्द है.... ज्यादा कुछ नहीं है।"

इतने में जूते चरमराते हुए डॉक्टर भी आ पहुँचे। उन्होंने भी कहा "ऐसी कोई विशेष बात नहीं है।" गर्म दूध में थोड़ी ब्रांडी मिलाकर देने का आदेश देकर डॉक्टर चलने लगे, तो वृध्द बड़े परेशान-से होकर उठने लगे। लड़की ने उनके मन की बात समझकर कहा, "बाबा, आप क्यों परेशान होते हैं- डॉक्टर की फीस और दवा के दाम घर से भेज दिए जाएँगे।" कहकर उसने विनय की ओर देख।

कैसी आश्चर्यमई आँखें! वे आँखें बड़ी हैं कि छोटी, काली कि भूरी, मानो यह ख्याल ही मन में नहीं उठता- पहली ही नज़र में जान पड़ता है, इन आँखों में एक अनिंदित प्रभाव है। उनमें संकोच नहीं है, दुविधा नहीं है, एक स्थिर शक्ति से वे भरी है।

विनय ने कहना चाहा, "फीस बहुत ही मामूली है.... उसके लिए.... उसकी आप.... वह मैं...."

लड़की की आँखें उसी पर टिकी थीं, इसलिए अपनी बात वह ठीक से पूरी नहीं कर पाया। किंतु फीस के पैसे उसे लेने ही होंगे, इस बारे में कोई संदेह उसे नहीं रहा।

वृध्द ने कहा, "देखिए, मेरे लिए ब्रांडी की ज़रूरत नहीं है....।"

कन्या ने उन्हें टोकते हुए कहा, "क्यों बाबा, डॉक्टर साहब कह जो गए हैं।"

वृध्द बोले, "डॉक्टर लोग तो ऐसा कहते ही रहते हैं। वह उनकी केवल एक बुरी आदत है। जो थोड़ी-सी कमज़ोरी मुझे जान पड़ती है वह गरम दूध से ही ठीक हो जाएगी।"&

दूध पीकर कुछ सँभलकर वृध्द ने विनय से कहा, "अब हम लोग चलें। आपको बड़ा कष्ट दिया।"

विनय की ओर देखकर कन्या ने कहा, "जरा एक गाड़ी...."

सकुचाते हुए वृध्द ने कहा, "फिर क्यों उन्हें कहती हो? हमारा घर तो पास ही है, इतना तो पैदल चले जाएँगे।"

लड़की ने कहा, "नहीं बाबा; ऐसा नहीं हो सकता।"

वृध्द ने उसकी बात का विरोध नहीं किया, और विनय स्वयं जाकर घोड़ागाड़ी बुला लाया। गाड़ी पर सवार होने से पहले वृध्द ने उससे पूछा, "आपका नाम क्या है?"

"मुझे विनयभूषण चट्टोपाध्या'य कहते हैं।"

वृध्द बोले, "मेरा नाम परेशबाबूचंद्र भट्टाचार्य है। पास ही 78 नंबर के मकान में रहता हूँ। फुरसत होने पर कभी हम लोगों के यहाँ आएँ तो हमें बड़ी खुशी होगी।"

विनय के चेहरे की ओर आँखें उठाकर कन्या इस अनुरोध का मौन समर्थन किया।

विनय तभी उसी गाड़ी में उनके घर जाने को आतुर था, किंतु वह शिष्टाचार के अनुकूल होगा या नहीं, सोच न पाकर खड़ा रह गया। गाड़ी चलने पर लड़की ने विनय को एक छोटा-सा नमस्कार किया। इस अभिवादन के लिए विनय बिल्कुल तैयार नहीं था, इसलिए हतबुध्दि-सा होकर वह प्रति-नमस्कार भी नहीं कर सका। घर के भीतर आकर वह बार-बार अपनी इतनी-सी चूक के लिए स्वयं को धिक्कारने लगा। विनय इन लोगों के मिलने से लेकर विदा होने तक के अपने आचरण की आलोचना करके देखने लगा- उसे लगा, शुरू से अंत तक उसके सारे व्यवहार में असभ्यता झलकती रही है। कौन-कौन-से समय क्या-क्या करना उचित था, क्या कहना उचित था, वह मन-ही-मन इसी को लेकर व्यर्थ उधेड़-बुन करने लगा। कमरे में लौटकर उसने देखा, जिस रूमाल से लड़की ने अपने पिता का मुँह पोंछा था वह रूमाल बिस्तर पर पड़ा रह गया है। उसने लपककर उसे उठा लिया। फकीर के गाने के स्वर उसके मन में गूँज उठे :

खाँसर भितर अचिन् पाखि कमने आसे याय।

दिन कुछ और चढ़ आया। बरसात बाद की धूप तेज़ हो उठी थी। गाड़ियों की कतार दफ्तरों की ओर और तेज़ी से दौड़ने लगी। विनय का मन उस दिन किसी काम में नहीं लगा। ऐसे अपूर्व आनंद के साथ ऐसी सघन वेदना का बोध उसे अपने जीवन में कभी नहीं हुआ था। उसका क्षुद्र घर और उसके आस-पास का कुत्सित कलकत्ता मायापुरी-सा हो उठा था। जिस राज्य में असंभव संभव हो जाता है, असाध्ये सिध्द होता है, जिसमें रूपातीत रूप लेकर सामने दिखाई देता है, मानो किसी ऐसे ही नियम-विहीन राज्य में विनय घूम रहा था। बरसात बाद की सुबह की धूप की दीप्त आभा उसके मन में बस गई थी, उसके रक्त में दौड़ रही थी, उसके अंत:करण के

सम्मुख एक ज्योतिर्मय चादर-सी छाकर दैनिक जीवन की सारी तुच्छता को बिल्कुरल ओझल कर गई थी। विनय का मन चाह रहा था कि अपनी परिपूर्णता को किसी अचरज-भरे रूप में प्रकट कर दे, किंतु उसके लिए कोई उपाय न पाकर उसका चित्त पीड़ित हो उठा था। अपना परिचय उसने बहुत ही सामान्य लोगों-जैसा ही दिया- अत्यंत क्षुद्र घर, इधर-उधर बिखरा हुआ सामान, बिछौना भी साफ नहीं। किसी-किसी दिन अपने कमरे में यह गुलदस्ते में फूल सजाकर रखता किंतु उस दिन दुर्भाय से कमरे में फूल की एक पंखुड़ी भी नहीं थी। सभी कहते हैं कि सभाओं में विनय जैसी सुंदर वक्तृता जबानी ही दे देता है, उससे एक दिन बहुत बड़ा वक्ता हो जाएगा, किंतु उस दिन ऐसी एक भी बात उसने नहीं कही जिससे उसकी बुध्दि का कुछ भी प्रमाण मिले। बार-बार उसे केवल यही सूझता कि यदि कहीं ऐसा हो सकता, कि जब वह बग्घी गाड़ी से टकराने जा रही थी, उस समय बिजली की तेज़ी से सड़क के बीच पहुँचकर मैं अनायास उन मुँहजोर घोड़ों की जोड़ी की लगाम पकड़कर उन्हें रोक देता। अपने उस काल्पनिक पौरुष की छवि जब उसके मन में मूर्त हो उठी, तब आईने के सामने जाकर एक बार अपना चेहरा देखे बिना उससे रहा नहीं गया।

तभी उसने देखा, सड़क पर खड़ा सात-आठ बरस का एक लड़का उसके घर का नंबर देख रहा है। विनय ने ऊपर से ही पुकारा, "यही है, ठीक यही घर है।" लड़का उसी के घर का नंबर ढूँढ रहा है, इस बारे में उसे थोड़ा भी संदेह नहीं था। सीढ़ियों पर चट्टियाँ चटकाता हुआ विनय तेज़ी से नीचे उतर गया। बड़े प्यार से लड़के को कमरे में लाकर उसके चेहरे की ओर ताकने लगा। वह बोला, "दीदी ने मुझे भेजा है।" कहते हुए उसने विनयभूषण के हाथ में एक पत्र दे दिया।

चिट्ठी लेकर पहले विनय ने लिफाफा बाहर से देखा। लड़कियों के हाथ की लिखावट में उसका नाम लिखा हुआ था। भीतर चिट्ठी-पत्री कुछ नहीं थी, केवल कुछ रुपए थे।

लड़का जाने को हुआ तो विनय ने उसे किसी तरह छोड़ा ही नहीं। उसका कंधा पकड़कर उसे दूसरी मंज़िल में ले गया।

लड़के का रंग उसकी बहन से अधिक साँवला था, किंतु चेहरे की बनावट कुछ मिलती थी। उसे देखकर विनय के मन में गहरे स्नेह और आनंद का संचार हुआ।

लड़का काफी तेज़ था। कमरे में घुसते ही दीवार पर लगा हुआ चित्र देखकर बोला, "यह किसकी तसवीर है?"

विनय ने कहा, "मेरे एक मित्र की है।"

लड़के ने फिर पूछा, "मित्र की तसवीर? कौन हैं आपके मित्र?"

हँसकर विनय ने उत्तर दिया, "तुम उन्हें नहीं जानते। मेरे मित्र गौर मोहन। उन्हें गोरा कहकर पुकारता हूँ। हम लोग बचपन से साथ पढ़े हैं।"

"अब भी पढ़ते हैं?"

"नहीं, अब और नहीं पढ़ते।"

"आपकी सऽब पढ़ाई हो गई है?"

इस छोटे लड़के के सामने भी विनय गर्व करने का लोभ संवरण न कर सका। बोला, "हाँ, सब पढ़ाई हो चुकी।"

विस्मित होकर लड़के ने एक लंबी साँस ली। मानो वह सोच रहा था, वह इतनी विद्या कितने दिन में पूरी कर पाएगा?

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्यानय है।"

विनय ने अचंभे से पूछा, "मुखोपाध्यानय?"

फिर थोड़ा-थोड़ा करके परिचय पूर्ण हुआ। परेशबाबू इनके पिता नहीं है, उन्होंने इन दोनों भाई-बहन को बचपन से पाला-पोसा है। दीदी का नाम पहले राधारानी था; परेशबाबू की स्त्री ने बदलकर 'सुचरिता' नाम रख दिया है।

देखते-देखते सतीश विनय के साथ खूब घुल-मिल गया। जब वह घर जाने के लिए उठा तब विनय ने पूछा, "अकेले चले जाओगे?"

गर्व से उसने कहा, "मैं तो अकेला ही जाता हूँ।"

विनय ने कहा, "चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आता हूँ।"

अपनी शक्ति पर विनय को अविश्वास करते देखकर सतीश ने खिन्न होकर कहा, "क्यों, मैं तो अकेला जा सकता हूँ।" अपने अकेले आने-जाने के अनेक विस्मयकारी उदाहरण उसने दे डाले। फिर भी उसके घर के द्वार तक विनय उसके साथ क्यों गया, उसका ठीक कारण वह बालक किसी तरह नहीं समझ सका।

घर पहुँचकर सतीश ने पूछा, 'अब आप भीतर नहीं आएँगे?"

विनय ने अपनी इच्छा का दमन करते हुए कहा, "फिर किसी दिन आऊँगा।"

घर लौटकर विनय वही पता लिखा हुआ लिफाफा जेब से निकालकर बड़ी देर तक देखता रहा। प्रत्येक अक्षर की रेखाएँ और बनावट उसे याद हो आईं। फिर रुपयों समेत वह लिफाफा उसने जतन से बक्स में रख दिया। ये कुछ रुपए कभी हाथ तंग होने पर भी खर्च किए जाएँगे, इसकी जैसे कोई संभावना नहीं रही।

घर लौटकर विनय वही पता लिखा हुआ लिफाफा जेब से निकालकर बड़ी देर तक देखता रहा। प्रत्येक अक्षर की रेखाएँ और बनावट उसे याद हो आईं। फिर रुपयों समेत वह लिफाफा उसने जतन से बक्स में रख दिया। ये कुछ रुपए कभी हाथ तंग होने पर भी खर्च किए जाएँगे, इसकी जैसे कोई संभावना नहीं रही।

वर्षा की साँझ में आकाश का अंधकार भी गर मानो और घना हो गया है। रंगहीन, वैचित्रयहीन बादलों के नि:शब्द दबाव के नीचे कलकत्ता शहर जैसे एक बहुत बड़े उदास कुत्ते की तरह पूँछ के नीचे मुँह छिपा कुंडली बाँधकर चुपचाप पड़ा हुआ है। पिछली साँझ से ही बूँदा-बाँदी होती रही है; इस वर्षा से खिड़की की धूल कीचड़ बन गई है, किंतु कीचड़ को धो डालने या बहा ले जाने लायक वर्षा नहीं हुई। आज तीसरे पहर चार बजे से बारिश बंद है, लेकिन घटा के आसार अच्छे नहीं हैं। वर्षा आने की आशंका से भरी हुई साँझ की उस बेला में, जब मन न सूने कमरे में टिकता है, न बाहर राहत पाता है, एक तिमंज़िले मकान की सीली हुई छत पर दो जने बेंत के मूढ़ों पर बैठे हैं।

बचपन में ये दोनों बंधु इसी छत पर स्कूल से लौटकर दौड़-दौड़कर खेले हैं; परीक्षा से पहले दोनों चिल्ला-चिल्लाकर पाठ रटते हुए पागलों की तरह तेज़ी से चक्कर काटते हुए इसी छत पर घूमे हैं; गर्मियों में कॉलिज से लौटकर शाम को इसी छत पर भोजन करके तर्क-वितर्क करने में ऐसे खो गए कि रात के दो बज गए हैं, और सबेरे की धूप ने जब उनके चेहरे पर बरसकर उन्हें जगाया है तब चौंककर उन्होंने जाना है कि दोनों वहीं चटाई पर पड़े-पड़े ही सो गए थे। कॉलेज की परीक्षाएँ जब और बाकी न रही, तब इसी छत पर हर महीने एक बार 'हिंदू हितैषी सभा' का अधिवेशन होता रहा है, इन दोनों बंधुओं में एक उसका सभापति है, और दूसरा उसका सेक्रेटरी।

सभापति का नाम गौरमोहन। जान-पहचान के लोग उसे 'गोरा' कहकर बुलाते हैं। वह मानो बेतहाशा बढ़ता हुआ आस-पास के लोगों से ऊपर उठ गया है। उसके कॉलेज के

पंडितजी उसे 'रजत-गिरि' कहकर पुकारते थे। उसकी देह का रंग बहुत ही उग्र रूप से चिट्टा था, उसे स्निग्ध करने वाली तनिक-सी मात्र भी उसमें नहीं थी। करीब छह फुट लंबा डील, चौड़ी काठी, मानो बाघ के पंजे की तरह, गले का स्वर ऐसा भारी और गंभीर कि एकाएक सुनने पर लोग चौंककर पूछ बैठते हैं, यह क्या है? उसके चेहरे की गठन भी अनावश्यक रूप से बड़ी और अतिरिक्त कठोर है; गाल और ठोड़ी का उभार मानो दुर्ग-द्वार की दृढ़ अर्गला की भाँति, आँखों के ऊपर भौंहें जैसे हैं ही नहीं और वहाँ से माथा कानों की ओर फैलता चला गया है। ओठ पतले और दबे हुए; उनके ऊपर नाक मानो खाँडे की तरह उठी हुई हैं। आँखें छोटी किंतु तीक्ष्ण, उनकी दृष्टि मानो तीर की धार की तरह दूर अदृश्य में अपना लक्ष्य ताक रही हो, किंतु क्षण-भर में ही लौटकर पास की चीज पर भी बिजली की तेज़ी से चोट कर सकती हो। देखने पर गौरमोहन को सुंदर नहीं कहा जा सकता, किंतु उसे देखे बिना रहा भी नहीं जा सकता- लोगों के बीच होने पर दृष्टि बरबस उसकी ओर खिंच जाती है।

और उसका मित्र विनय साधारण बंगाली, पढ़े-लिखे भद्रजन की तरह नम्र किंतु तेजस, स्वभाव की सुकुमारता और बुध्दि की प्रखरता के मेल ने उसके चहेरे को एक विशेष कांति दे दी है। कॉलेज में वह बराबर अच्छे नंबर और वृत्ति पाता रहा है; किसी तरह भी गोरा उसके साथ नहीं चल सका। पाठ्य विषयों की ओर गोरा की वैसी रुचि ही नहीं रही। वह विनय की भाँति बात को न तो जल्दी समझ सकता था, न याद रख पाता था। विनय मानो उसका वाहन बनकर उसे अपने पीछे-पीछे कॉलेज की कई परीक्षाओं से पार खींचता लाया है।

गोरा कह रहा था, "जो कहता हूँ, सुनो! अविनाश जो ब्राह्मण लोगों की बुराई कर रहा था उससे यही जान पड़ता है कि वह ठीक, स्वस्थ, स्वाभाविक अवस्था में है। इस पर अचानक तुम ऐसे क्यों बिगड़ उठे?"

"क्या अजीब बात है! उस बारे में कोई सवाल भी हो सकता है, मैं तो सोच ही नहीं सकता था।"

"ऐसा है तो खोट कहीं तुम्हारे ही मन में है। लोगों का एक गुट समाज के बंधन तोड़कर हर बात में उल्टा चलने लगे, और समाज के लोग अविचलित भाव से उनकी बातों पर विचार करते रहें, यह स्वाभाविक नियम नहीं है। समाज के लोग उनको गलत समझें ही। वह जो सीधा करेंगे इनकी नज़रों में वह टेढ़ा दिखेगा ही, उनका अच्छा इनके निकट बुरा होगा ही और ऐसा होना उचित भी है। समाज तोड़कर मनमाने ढंग से निकल जाने की जो-जो सज़ाएँ हैं, यह भी उनमें से एक है।"

विनय, "जो स्वाभाविक है वह अच्छा भी है, यह तो नहीं कहा जा सकता।"

कुछ गरम होकर गोरा ने कहा, "हमें अच्छे से मतलब नहीं है। दुनिया में दो-चार जने अच्छे रहें तो रहें; पर बाकी सब स्वाभाविक ही रहें तो ही ठीक है। जिन्हें ब्रह्म बनकर बहादुरी दिखाने का शौक है, अब्रह्म लोग उनके सब कामों को उल्टा समझकर उनकी निंदा करें, इतना कष्ट उन्हें सहना ही होगा। वे स्वयं भी छाती फुलाकर इतराते फिरें, और उनके विरोध भी पीछे-पीछे वाह-वाह करते चलें, ऐसा दुनिया में नहीं होता। यदि होता भी तो दुनिया का कुछ भला न होता।"

"मैं गुट की निंदा की बात नहीं कहता। व्यक्तिगत...."

"गुट की निंदा कोई निंदा थोड़े ही है? वह तो अपनी-अपनी राय देने की बात है। निंदा तो व्यक्तिगत ही हो सकती है। अच्छा साधू महाराज, आपने क्या कभी निंदा नहीं की?"

"की है। बहुत की है। पर उसके लिए मैं लज्जित हूँ।"

दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधते हुए गोरा ने कहा, "नहीं विनय, यह नहीं हो सकता, किसी तरह नहीं हो सकता।"

थोड़ी देर विनय चुप रहा। फिर बोला, "क्यों, क्या हुआ? तुम्हें भय किस बात का है?"

गोरा, "मैं साफ देख रहा हूँ, तुम अपने को कमज़ोर बना रहे हो!"

थोड़ा उत्तेजित होते हुए विनय ने कहा, "कमज़ोर! तुम जानते हो, मैं चाहूँ तो उनके घर अभी जा सकता हूँ.... उन्होंने मुझे निमंत्रित भी किया है.... पर मैं गया नहीं।"

गोरा, "हाँ; किंतु तुम गए नहीं, तुम इसी बात को किसी प्रकार भूल नहीं पा रहे हो! दिन-रात यही सोचते हो कि 'मैं गया नहीं, मैं उनके घर गया नहीं' इससे तो हो आना ही अच्छा है।"

विनय, "तो क्या तुम जाने को कह रहे हो?"

घुटने पर हाथ पटकते हुए गोरा ने कहा, "नहीं, मैं जाने को नहीं कहता। मैं तुम्हें यही शिक्षा दे रहा हूँ कि तुम जिस दिन जाओगे उस दिन बिल्कुल पूरे चले जाओगे। अगले दिन से उनके घर खाना-पीना शुरू कर दोगे और ब्रह्म-समाज के खाते में नाम लिखकर एकदम श्रेष्ठ प्रचारक हो जाओगे!"

विनय, "क्या बात करते हो! और उससे आगे?"

गोरा, "उससे आगे? मरने से बड़ी दुर्गति और क्या होगी? ब्राह्मण के लड़के होकर तुम चमारों में जाकर मरोगे, आचार-विचार कुछ नहीं रहेगा। दिशाहीन नाव की तरह पूरब-पश्चिम की ज्ञान लुप्त हो जाएगा.... तब तुम्हें लगेगा कि जहाज़ को बंदरगाह पर लाना ही गलत है, संकीर्णता है.... केवल बेमतलब बहते रहना ही वास्तव में जहाज़ चलाना है। किंतु यह सब फिजूल की बब-बक करने का मुझमें धीरज नहीं है.... मैं कहता हूँ, तुम जाओ! अध:पतन के पंक की ओर पाँव बढ़ाकर खड़े-खड़े हमें भी क्यों डरा रहे हो!"

विनय हँस पड़ा। बोला, "डॉक्टर के निराश हो जाने से ही तो रोगी हमेशा मर नहीं जाता। मौत सामने खड़ी होने के मुझे तो कोई लक्षण नहीं दीखते।"

गोरा, "नहीं दीखते?"

विनय, "नहीं।"

गोरा, "गाड़ी छूटती नहीं जान पड़ती?"

विनय, "नहीं, बहुत अच्छी चल रही है।"

गोरा, "ऐसा नहीं लगता कि परोसने वाला हाथ अगर सुंदर हों तो म्लेच्छ का अन्न भी देवता का प्रसाद हो जाता है?"

विनय अत्यंत संकुचित हो उठा। बोला, "बस, अब चुप हो जाओ!"

गोरा, "क्यों, किसी के अपमान की तो इसमें कोई बात नहीं है। वह सुंदर हाथ कोई अस्पृश्य तो है नहीं। जिस पवित्र कर-पल्लव को पराए पुरुषों के साथ शेकहैंड भी चलता है, उसका उल्लेख भी तुम्हें सहन नहीं होता, 'तदानाशंसे मरणाय संजय'!"

विनय, "देखा गोरा, मैं स्त्री-जाति में श्रध्दा रखता हूँ। हमारे शास्त्रों में भी.... "

गोरा, "स्त्री-जाति में तुम जैसी श्रध्दा रखते हो, उसके लिए शास्त्रों की दुहाई मत दो! उसको श्रध्दा नहीं कहते। जो कहते हैं यदि वह ज़बान पर लाऊँगा तो मारने दौड़ेगे।"

विनय, "यह तुम्हारी ज्यादती है।"

गोरा, "शास्त्र स्त्रियों के बारे में कहते है, 'पूजार्हा गृहदीप्तय:'। वे पूजा की पात्र हैं क्योंकि गृह को दीप्ति देती हैं विलायती विधान में उनको वो मान इसलिए दिया जाता है कि वे पुरुषों के हृदय को दीप्त कर देती हैं, उसे पूजा न कहना ही अच्छा है।"

विनय, "कहीं-कहीं कुछ विकृति देखी जाती है, इसी से क्या एक बड़े वर्ग पर ऐसे छींटे कसना उचित है?"

अधीर होकर गोरा ने कहा, "विनू, अब क्योंकि तुम्हारी सोचने-विचारने की बुध्दि नष्ट हो गई है अत: मेरी बात मान लो! मैं कहता हूँ, विलायती शास्त्र में स्त्री-जाति के बारे में बड़ी-बड़ी जो सब बातें हैं, उनकी जड़ में है वासना। स्त्री-जाति की पूजा करने का स्थान है माता का पद, सती-लक्ष्मी गृहिणी का आसन.... वहाँ से उन्हें हटाकर उनका जो गुणगान किया जाता है उसमें अपमान छिपा हुआ है। तुम्हारा मन जिस कारण से पतंगे-सा परेशबाबू के घर के आस-पास चक्कर काट रहा है, अंग्रेज़ी में उसे 'लव' कहते हैं.... किंतु अंग्रेज़ की होड़ में इसी लव को ही संसार का चरम पुरुषार्थ मानकर उसकी उपासना करने बैठ जाने को बेहूदापन कहीं तुम पर भी न सवार हो जाए!"

चाबुक खाए घोड़े की तरह तिलमिलाकर विनय ने कहा, "ओह, गोरा! रहने दो, बहुत हो गया।"

गोरा, "बहुत कहाँ हुआ? कुछ भी नहीं हुआ। स्त्री और पुरुष को उनकी अपनी-अपनी जगह सहज भाव से देखना हमने नहीं सीखा, तभी तो बहुत-सी काव्य कला उन पर मढ़ दी है।"

विनय ने कहा, "अच्छा, माना कि स्त्री-पुरुष का संबंध जहाँ रहकर सहज हो सकता, हम प्रवृत्ति की सनक में पड़कर उससे आगे बढ़ जाते हैं, और इस तरह उसे झूठा कर देते हैं। किंतु क्या यह अपराध विदेश का ही है? इस संबंध में अंग्रेज़ी की काव्य कला अगर झूठी है, तो हम जो हमेशा 'कामिनी-कंचन-त्याग' में अंग्रेज की काव्य कला अगर झूठी है, तो हम जो हमेशा 'कामिनी-कांचन-त्याग' को लेकर बड़ी-बड़ी बातें करते रहे हैं, वे भी तो मिथ्या हैं? मनुष्य की प्रकृति जिन चीज़ों में सहज ही अपने को भुला देती है, उनसे मनुष्य को बचाने के लिए कोई प्रेम के सुंदर पक्ष को ही कवित्व के सहारे सज्ज्वल कर देता है और उसकी बुराईयों को ढँक देता है; और कोई उसकी बुराइयों को ही बड़ी करके दिखाता है और 'कामिनी-कांचन-त्याग' किनारा दे देता है।

दोनों केवल दो तरह के लोगों की दो तरह की पध्दति है; एक की बुराई करके दूसरे का समर्थन करना ठीक नहीं है।"

गोरा, "नहीं, तुम्हें मैंने ग़लत समझा। अभी तुम्हारी हालत इतनी खराब नहीं हुई! अगर तुम्हारे दिमाग़ में फिलासफी भर रही है, तब तो तुम निर्भय होकर 'लव' कर सकते हो! किंतु समय रहते ही सँभल जाना, तुम्हारे हितैषी मित्र का यही निवेदन है।"

व्यस्त भाव से विनय ने कहा, "अरे, क्या तुम पागल हुए हो? मैं, और लव! लेकिन इतना तो मैं स्वीकार करता हूँ कि परेशबाबू वगैरा को जितना मैंने देखा है, और जो कुछ उन लोगों के बारे में सुना है, उससे उनके प्रति मुझे काफी श्रध्दा हो गई है मै। समझता हूँ इसी कारण यह जानने का आकर्षण भी मुझमें जागा होगा कि घर के भीतर उनकी जीवन-चर्या कैसी चलती है।"

गोरा, "ठीक है। उस आकर्षण से ही बचकर चलना होगा। उन लोगों के जीवन-वृत्तांत का अध्यातय यदि जाने बिना ही रह गया, तो क्या? वे ठहरे शिकारी जीव; उनकी भीतरी बातें जानने चलने पर इतने गहरे जाना पड़ेगा कि तुम्हारी चुटिया भी अंत में नहीं दिखाई देगी!"

विनय, "तुममें यही एक दोष है। तुम समझते हो जो कुछ शक्ति है ईश्वर ने अकेले तुम्हीं को दी है, और बाकी सब बिल्कुमल दुर्बल प्राणी हैं।'

गोरा को मानो यह बात बिल्कुकल नहीं मालूम हुई हो। उत्साह से विनय की पीठ ठोकता हुआ बोला, "ठीक कहते हो.... वही मेरा दोष है.... बहुत बड़ा दोष!"

"ओफ्! तुम्हारा उससे भी बड़ा एक और दोष है। किसका मन कितनी चोट सह सकता है, इसका कुछ भी अंदाज़ा तुम्हें नहीं है!"

इसी समय गोरा के सौतेले बड़े भाई महिम, अपने भारी-भरकम शरीर को ढोकर ऊपर लाने के श्रम में हाँफते-हाँफते आकर बोले, "गोरा!"

जल्दी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ गोरा और बोला, **"जी!"**

महिम, "यही देखने आया था कि बरसात की घटा कहीं हमारी छत पर ही तो नहीं उतर आई गरजने के लिए! आज माजरा क्या है? इस बीच अग्रेज़ को सागर आधा पार करा दिया क्या? वैसे अंग्रेज़ का तो ख़ास नुकसान हुआ नहीं जान पड़ता, सिर्फ

निचली मंज़िल में जो सिर पकड़कर बैठे हैं उन्हीं को शेर की दहाड़ से थोड़ी तकलीफ हो रही है।" यह कह महिम लौटकर नीचे चले गए।

लज्जित होकर गोरा खड़ा रहा। लज्जा के साथ-साथ उसके भीतर गुस्सा भी उबलने लगा, किंतु वह अपने ऊपर था या किसी और पर, यह नहीं कहा जा सकता। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे मानो वह अपने ही से कहने लगा, "सभी बातों में जितना होना चाहिए उससे कहीं ज्यादा ज़ोर मैं अपनी बात पर देता हूँ दूसरे के लिए वह असह्य होगा, इसका मुझे ध्याथन नहीं रहता।"

विनय ने गौरमोहन के पास आकर प्यार से उसका हाथ थाम लिया।

में अंग्रेज की काव्य कला अगर झूठी है, तो हम जो हमेशा 'कामिनी-कांचन-त्याग' को लेकर बड़ी-बड़ी बातें करते रहे हैं, वे भी तो मिथ्या हैं? मनुष्य की प्रकृति जिन चीज़ों में सहज ही अपने को भुला देती है, उनसे मनुष्य को बचाने के लिए कोई प्रेम के सुंदर पक्ष को ही कवित्व के सहारे सज्ज्वल कर देता है और उसकी बुराईयों को ढँक देता है; और कोई उसकी बुराइयों को ही बड़ी करके दिखाता है और 'कामिनी-कांचन-त्याग' किनारा दे देता है। दोनों केवल दो तरह के लोगों की दो तरह की पध्दति है; एक की बुराई करके दूसरे का समर्थन करना ठीक नहीं है।"

गोरा, "नहीं, तुम्हें मैंने ग़लत समझा। अभी तुम्हारी हालत इतनी खराब नहीं हुई! अगर तुम्हारे दिमाग़ में फिलासफी भर रही है, तब तो तुम निर्भय होकर 'लव' कर सकते हो! किंतु समय रहते ही सँभल जाना, तुम्हारे हितैषी मित्र का यही निवेदन है।"

व्यस्त भाव से विनय ने कहा, "अरे, क्या तुम पागल हुए हो? मैं, और लव! लेकिन इतना तो मैं स्वीकार करता हूँ कि परेशबाबू वगैरा को जितना मैंने देखा है, और जो कुछ उन लोगों के बारे में सुना है, उससे उनके प्रति मुझे काफी श्रध्दा हो गई है मै। समझता हूँ इसी कारण यह जानने का आकर्षण भी मुझमें जागा होगा कि घर के भीतर उनकी जीवन-चर्या कैसी चलती है।"

गोरा, "ठीक है। उस आकर्षण से ही बचकर चलना होगा। उन लोगों के जीवन-वृत्तांत का अध्यातय यदि जाने बिना ही रह गया, तो क्या? वे ठहरे शिकारी जीव; उनकी भीतरी बातें जानने चलने पर इतने गहरे जाना पड़ेगा कि तुम्हारी चुटिया भी अंत में नहीं दिखाई देगी!"

विनय, "तुममें यही एक दोष है। तुम समझते हो जो कुछ शक्ति है ईश्वर ने अकेले तुम्हीं को दी है, और बाकी सब बिल्कुमल दुर्बल प्राणी हैं।'

गोरा को मानो यह बात बिल्कुकल नहीं मालूम हुई हो। उत्साह से विनय की पीठ ठोकता हुआ बोला, "ठीक कहते हो.... वही मेरा दोष है.... बहुत बड़ा दोष!"

"ओफ्! तुम्हारा उससे भी बड़ा एक और दोष है। किसका मन कितनी चोट सह सकता है, इसका कुछ भी अंदाज़ा तुम्हें नहीं है!"

इसी समय गोरा के सौतेले बड़े भाई महिम, अपने भारी-भरकम शरीर को ढोकर ऊपर लाने के श्रम में हाँफते-हाँफते आकर बोले, "गोरा!"

जल्दी से कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ गोरा और बोला, **"जी!"**

महिम, "यही देखने आया था कि बरसात की घटा कहीं हमारी छत पर ही तो नहीं उतर आई गरजने के लिए! आज माजरा क्या है? इस बीच अग्रेज़ को सागर आधा पार करा दिया क्या? वैसे अंग्रेज़ का तो ख़ास नुकसान हुआ नहीं जान पड़ता, सिर्फ निचली मंज़िल में जो सिर पकड़कर बैठे हैं उन्हीं को शेर की दहाड़ से थोड़ी तकलीफ हो रही है।" यह कह महिम लौटकर नीचे चले गए।

लज्जित होकर गोरा खड़ा रहा। लज्जा के साथ-साथ उसके भीतर गुस्सा भी उबलने लगा, किंतु वह अपने ऊपर था या किसी और पर, यह नहीं कहा जा सकता। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे मानो वह अपने ही से कहने लगा, "सभी बातों में जितना होना चाहिए उससे कहीं ज्यादा ज़ोर मैं अपनी बात पर देता हूँ दूसरे के लिए वह असह्य होगा, इसका मुझे ध्याथन नहीं रहता।"

विनय ने गौरमोहन के पास आकर प्यार से उसका हाथ थाम लिया।

गोरा और विनय छत से उतरने की तैयारी कर रहे थे कि तभी गोरा की माँ ऊपर आ गईं। विनय ने उनके पैरों की धूल लेकर प्रणाम किया।

देखने में गोरा की माँ नहीं जान पड़तीं। वह बहुत ही दुबली-पतली और संयत हैं। बाल यदि कुछ-कुछ पके भी हों तो बाहर से मालूम नहीं होता; अचकन देखने पर यही जान पड़ता है कि उनकी उम्र चालीस से कम ही होगी। चेहरे की बनावट अत्यंत सुकुमार; नाक, ओठ, ठोड़ी और ललाट की रेखाएँ सब मानो बड़े यत्न से उकेरी हुईं; शरीर का प्रत्येक अंग नपा-तुला; चेहरे पर हमेशा एक ममत्व और तेजस्वी बुध्दि का भाव

झलकता रहता है। श्याम-वर्ण रंग, जिसका गोरा के रंग से कोई मेल नहीं है। उनको देखते ही एक बात की ओर हर किसी का ध्याचन जाता है कि साड़ी के साथ कमीज़ पहने रहती हैं। जिस समय की हम बात कर रहे हैं उन दिनों यद्यपि आधुनिक समाज में स्त्रियों में शमीज़ या ऊपर के वस्त्र पहनेन का चलन शुरू हो गया था तथापि शालीन गृहिणियाँ इसे निराख्रिस्तानीपन कहकर इसकी अवज्ञा करती थीं। आनंदमई के पति, कृष्णदयाल बाबू कमिसरियट में काम करते थे। जवानी से ही आनंदमई उनके साथ पश्चिम में रहीं थी। इसी कारण यह संस्कार उनके मन पर नहीं पड़ा था कि अच्छी तरह बदन ढँकना, या ऐसे कपड़े पहनना लज्जा की या हँसी की बात है। बर्तन माँज-घिसकर, घर-बार धो-पोंछकर, राँधना-बनाना, सिलाई-कढ़ाई और हिसाब-गिनती करके, कपड़े धोकर धूप दिखाकर अड़ोस-पड़ोस की खोज-खबर लेकर भी उनका समय चुकता ही नहीं। अस्वस्थ होने पर भी वह शरीर से किसी तरह की ढिलाई नहीं बरततीं। कहती हैं, "बीमारी से तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन काम किए बिना कैसे चलेगा?"

गोरा की माँ बोलीं, "गोरा की आवाज़ जब नीचे सुनाई पड़ती है तो मैं फोरन जान जाती हूँ कि जरूर विनू आया होगा। पिछले कई दिन से घर में बिल्कु।ल शांति थी। क्या हुआ था बेटा, तू इतने दिन आया क्यों नहीं? कुछ बीमार-ईमार तो नहीं रहा?"

सकुचाते हुए विनय ने कहा, "नहीं माँ, बीमार नहीं.... लेकिन यह आँधी-पानी.... "

गोरा बोला, "क्यों नहीं! इसके बाद बरसात जब खत्म हो जाएगी तब विनय बाबू कहेंगे, कड़ी धूप पड़ रही है! देवता को दोष देने से वे कोई सफाई तो दे नहीं सकते। इनके मन का असली भेद तो अंतर्यामी ही जानते हैं।"

विनय बोला, "क्या फिजूल बकते हो, गोरा?"

आनंदमई बोलीं, "ठीक तो है बेटा, ऐसे नहीं कहा करते। मनुष्य का मन कभी ठीक रहता है, कभी नहीं रहता.... सब दिन एक जैसे थोड़े ही होते हैं? इसको लेकर उलझने से और झंझट खड़ा होता है। चल विनू, मेरे कमरे में चल, तेरे लिए कुछ परोसकर आई हूँ।"

सिर हिलाकर गोरा ने ज़ोर से कहा, "नहीं माँ, यह नहीं होने का। तुम्हारे कमरे में विनय को नहीं खाने दूँगा।"

आनंदमई, "वाह रे! क्यों रे, तुझे तो मैंने कभी खाने को नहीं कहा.... इधर तेरे पिता भी महा शुध्दाचारी हो गए हैं, खुद का बनाया छोड़कर कुछ खाते नहीं। मेरा नू अच्छा लड़का है, तेरी तरह कट्टटर नहीं है.... तू इसे ज़बरदस्ती बाँधकर रखना चाहता है?'

गोरा, "बिल्कुहल ठीक! मैं इसे बाँधकर ही रखूँगा। तुम जब तक उस ख्रिस्तान नौकरानी लछमिया को भगा नहीं देतीं तब तक तुम्हारे कमरे में खाना नहीं हो सकेगा!"

आनंदमई, "अरे गोरा, ऐसी बात तुझे ज़बान पर नहीं लानी चाहिए। हमेशा से तू उसके हाथ का बना खाता रहा है; उसी ने तुझे बचपन से पाल-पोसकर बड़ा किया है। अभी उस दिन तक उसके हाथ की बनाई चटनी के बिना तुझे खाना नहीं रुचता था। जब बचपन में तुझे माता निकली थी तब लछमिया ने ही तेरी सेवा करके तुझे बचाया, वह मैं कभी नहीं भूल सकूँगी।"

गोरा, "उसे पेंशन दे दो, ज़मीन खरीद दो, घर बनवा दो, जो चाहो कर दो.... किंतु उसे और नहीं रखा जा सकता, माँ!"

आनंदमई, "गोरा, तू समझता है, पैसा देकर ही सब ऋण चुकता हो जाते हैं! वह ज़मीन भी नहीं चाहती, घर नहीं चाहती; तुझे नहीं देख पाएगी तो मर जाएगी।"

गोरा, "तुम्हारी जैसी मर्ज़ी.... रखे रहो उसे! पर वीनू तुम्हारे कमरे में नहीं खा सकेगा। जो नियम है वह मानना ही होगा, उससे इधर-उधर किसी तरह नहीं हुआ जा सकता। माँ, तुम इतने बड़े अध्यारपक वंश की हो, तुम जो आचार का पालन नहीं करतीं यह.... "

आनंदमई, "रे, पहले तेरी माँ आचार मानकर ही चलती थी; इसी के लिए उसे कितने आँसू बहाने पड़े.... तब तू कहाँ था? रोज़ शिव की प्रतिष्ठा करके पूजा करने बैठती थी और तेरे पिता उठाकर सब फेंक देते थे! उन दिनों अपरिचित ब्राह्मण के हाथ का खाते भी मुझे घृणा होती थी। उन दिनों हर जगह रेल नहीं जाती थी.... बैलगाड़ी में, डाकगाड़ी में, पालकी में, ऊँट की सवारी में कितने ही दिन मैंने उपवास में काटे! क्या सहज ही तुम्हारे पिता मेरा आचार भंग कर सके? वह सब जगह मुझको साथ लेकर घूमते-फिरते थे, इसीलिए उनके साहब-अफसर उनसे खुश थे, और उनकी तनख्वाह भी बढ़ती गई.... इसीलिए उन्हें बहुत दिनों तक एक ही जगह रहने दिया जाता, कोई बदली करना न चाहता। अब तो बुढ़ापे में नौकरी से छुट्टी पाकर बहुत-सा पैसा जमा करके सहसा वह बड़े आचारवान हो उठे हैं। किंतु मुझसे वह नहीं होगा। मेरी सात

पीढ़ी के संस्कार एक-एक करके उखाड़ फेंके गए.... अब क्या कह देने भर से ही फिर जम जाएँगे?"

गोरा, "अच्छा, पिछली पीढ़ियों की बात तो छोड़ो.... वे लोग आपत्ति करने आने वाले नहीं, किंतु हम लोगों की खातिर तुम्हें कुछ बातें मानकर ही चलना होगा। शास्त्र की मर्यादा नहीं रखता तो न सही, स्नेह का मान तो रखना होगा।"

आनंदमई, "तू मुझे इतना क्या समझा रहा है? मेरे मन में क्या होता है वह मैं ही जानती हूँ। यदि मेरे कारण स्वामी और पुत्र को पग-पग पर मुश्किल ही होने लगी तो मुझे क्या सुख मिलेगा? किंतु तुझे गोद लेते ही मैंने आचार को बहा दिया था। यह तू जानता है? छोटे बच्चे को छाती से लगाकर ही समझ में आता है कि दुनिया में जात लेकर काई नहीं जन्मता। जिस दिन यह बात मेरी समझ में आ गई, उसी दिन से मैंने यह निश्चित रूप से जान लिया कि यदि मैं ख्रिस्तान या छोटी जात कहकर किसी से घृणा करूँगी तो ईश्वर तुझे भी मुझसे छीन लेंगे। तू मेरी गोद भरकर मेरे घर में प्रकाश किए रहे, तो मैं दुनिया की किसी भी जात के लोगों के हाथ का पानी पी लूँगी।"

विनय के मन में आज आनंदमई की बात सुनकर हठात् एक धुँधले संदेह का आभास हुआ। एक बार उसने आनंदमई के और एक बार गोरा के मुँह की ओर देखा; किंतु फिर तत्क्षण ही तर्क का भाव मन से निकाल दिया।

गोरा ने कहा, "माँ, तुम्हारा तर्क ठीक समझ में नहीं आया। जो लोग आचार-विचार करते हैं और शास्त्र मानकर चलते हैं उनके घर में भी तो बच्चे बने रहते हैं। तुम्हारे लिए ही ईश्वर अलग कानून बनाएँगे, ऐसी बात तुम्हारे मन में क्यों आई?"

आनंदमई, "जिसने मुझे तुम्हें दिया उसी ने ऐसी बुध्दि भी दी, इसका मैं क्या करूँ? इसमें मेरा कोई बस नहीं। किंतु पगले, तेरा पागलपन देखकर मैं हूँसू या रोऊँ, कुछ समझ में नहीं। खैर, वह सब बात जाने दो! तो विनय मेरे कमरे में नहीं खाएगा?"

गोरा, "उसे तो मौका मिलने की देर है.... अभी दौड़ेगा। वह ब्राह्मण का लड़का है, दो टुकड़े मिठाई देकर यह बात उसे भुला देने से नहीं चलेगा। उसे बहुत त्याग करना होगा, प्रवृत्ति को दबाना होगा तभी वह अपने जन्म के गौरव की रक्षा कर सकेगा। लेकिन माँ, तुम बुरा मत मानना.... मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।"

आनंदमई, "बुरा क्यों मानूँगी? तू जो कर रहा है जानकर नहीं कर रहा है, यह मैं तुझे बताए देती हूँ। मेरे मन में यही क्लेश रह गया कि तुझे मैंने आदमी तो बनाया किंतु.... खैर, छोड़ इसे। तू जिसे धर्म कहता फिरता है उसे मैं नहीं मान सकूँगी। तू मेरे कमरे में मेरे हाथ का नहीं खाएगा, न सही.... किंतु तुझे दोनों बेला देखती रह सकूँ यही मेरी इच्छा है.... विनय बेटा, तुम ऐसे उदास न होओ.... तुम्हारा मन कोमल है, तुम सोच रहे हो कि मुझे चोट पहुँची, लेकिन ऐसा नहीं है, बेटा! फिर किसी दिन न्यौता देकर किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथ से बना तुम्हें खिलवा दूँगी.... उसमें अड़चन कौन-सी है! मैं ढीठ हूँ, लछमिया के हाथ का पानी पीऊँगी, यह मैं सभी से कहे देती हूँ।"

गोरा की माँ नीचे चली गईं। कुछ देर विनय चुप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "गोरा, यह तो कुछ ज्यादती हो रही है।"

गोरा, "किसकी ज्यादती?"

विनय, "तुम्हारी।"

गोरा "रत्ती-भर भी नहीं। जिसकी जो सीमा है उसे ठीक मानते हुए ही मैं चलना चाहता हूँ। छुआछूत के मामले में सुई की नोक-भर हटने से भी अंत में कुछ बाकी नहीं रहेगा।

विनय, "किंतु माँ जो है।"

गोरा, "माँ किसे कहते हैं यह मैं जानता हूँ। उसको मुझे बताने की ज़रूरत नहीं है। मेरी माँ-जैसी माँएँ कितनी ही होंगी! किंतु आचार को न मानना शुरू करूँ तो शायद एक दिन माँ को भी नहीं मानूँगा। देखो विनय, एक बात तुम्हें बताता हूँ, याद रखो! हृदय बड़ी उत्तम चीज़ है, किंतु सबसे उत्तम नहीं है।"

थोड़ी देर बाद विनय कुछ झिझकता हुआ बोला, "देखो गोरा, आज माँ की बात सुनकर मेरे मन में एक हलचल-सी मच गई है। मुझे लगता है माँ के मन में कोई बात है जो वह हमें समझा नहीं पा रही हैं, इसी से कष्ट पा रही हैं।"

अधीर होकर गोरा ने कहा, "अरे विनय, कल्पना को इतनी ढील मत दो.... इससे केवल समय नष्ट होता है और हाथ कुछ नहीं आता।"

विनय, "तुम दुनिया की किसी चीज़ की ओर कभी सीधी तरह देखते ही नहीं; तभी जो तुम्हें नज़र नहीं पड़ता उसी को तुम कल्पना कहकर उड़ा देना चाहते हो! किंतु मैं तुमसे कहता हूँ, मैंने कई बार देखा है, मानो माँ किसी बात को लेकर सोच रही हैं.... किसी बात को ठीक तरह सुलझा नहीं पा रही हैं, और इसीलिए उनके मन में एक घुटन है। गोरा, उनकी बात तुम्हें ज़रा ध्याान देकर सुननी चाहिए।"

गोरा, "ध्यान देकर जितना सुना जा सकता है उतना तो सुनता हूँ। उससे अधिक सुनने की कोशिश करने में गलत सुनने की आशंका रहती है। इसलिए उसकी कोशिश नहीं करता।"

गोरा और विनय छत से उतरने की तैयारी कर रहे थे कि तभी गोरा की माँ ऊपर आ गईं। विनय ने उनके पैरों की धूल लेकर प्रणाम किया।

देखने में गोरा की माँ नहीं जान पड़तीं। वह बहुत ही दुबली-पतली और संयत हैं। बाल यदि कुछ-कुछ पके भी हों तो बाहर से मालूम नहीं होता; अचकन देखने पर यही जान पड़ता है कि उनकी उम्र चालीस से कम ही होगी। चेहरे की बनावट अत्यंत सुकुमार; नाक, ओठ, ठोड़ी और ललाट की रेखाएँ सब मानो बड़े यत्न से उकेरी हुईं; शरीर का प्रत्येक अंग नपा-तुला; चेहरे पर हमेशा एक ममत्व और तेजस्वी बुध्दि का भाव झलकता रहता है। श्याम-वर्ण रंग, जिसका गोरा के रंग से कोई मेल नहीं है। उनको देखते ही एक बात की ओर हर किसी का ध्याचन जाता है कि साड़ी के साथ कमीज़ पहने रहती हैं। जिस समय की हम बात कर रहे हैं उन दिनों यद्यपि आधुनिक समाज में स्त्रियों में शमीज़ या ऊपर के वस्त्र पहनेन का चलन शुरू हो गया था तथापि शालीन गृहिणियाँ इसे निराख्रिस्तानीपन कहकर इसकी अवज्ञा करती थीं। आनंदमई के पति, कृष्णदयाल बाबू कमिसरियट में काम करते थे। जवानी से ही आनंदमई उनके साथ पश्चिम में रहीं थी। इसी कारण यह संस्कार उनके मन पर नहीं पड़ा था कि अच्छी तरह बदन ढँकना, या ऐसे कपड़े पहनना लज्जा की या हँसी की बात है। बर्तन माँज-घिसकर, घर-बार धो-पोंछकर, राँधना-बनाना, सिलाई-कढ़ाई और हिसाब-गिनती करके, कपड़े धोकर धूप दिखाकर अड़ोस-पड़ोस की खोज-खबर लेकर भी उनका समय चुकता ही नहीं। अस्वस्थ होने पर भी वह शरीर से किसी तरह की ढिलाई नहीं बरततीं। कहती हैं, "बीमारी से तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन काम किए बिना कैसे चलेगा?"

गोरा की माँ बोलीं, "गोरा की आवाज़ जब नीचे सुनाई पड़ती है तो मैं फोरन जान जाती हूँ कि जरूर विनू आया होगा। पिछले कई दिन से घर में बिल्कु।ल शांति थी। क्या हुआ था बेटा, तू इतने दिन आया क्यों नहीं? कुछ बीमार-ईमार तो नहीं रहा?"

सकुचाते हुए विनय ने कहा, "नहीं माँ, बीमार नहीं.... लेकिन यह आँधी-पानी.... "

गोरा बोला, "क्यों नहीं! इसके बाद बरसात जब खत्म हो जाएगी तब विनय बाबू कहेंगे, कड़ी धूप पड़ रही है! देवता को दोष देने से वे कोई सफाई तो दे नहीं सकते। इनके मन का असली भेद तो अंतर्यामी ही जानते हैं।"

विनय बोला, "क्या फिजूल बकते हो, गोरा?"

आनंदमई बोलीं, "ठीक तो है बेटा, ऐसे नहीं कहा करते। मनुष्य का मन कभी ठीक रहता है, कभी नहीं रहता.... सब दिन एक जैसे थोड़े ही होते हैं? इसको लेकर उलझने से और झंझट खड़ा होता है। चल विनू, मेरे कमरे में चल, तेरे लिए कुछ परोसकर आई हूँ।"

सिर हिलाकर गोरा ने ज़ोर से कहा, "नहीं माँ, यह नहीं होने का। तुम्हारे कमरे में विनय को नहीं खाने दूँगा।"

आनंदमई, "वाह रे! क्यों रे, तुझे तो मैंने कभी खाने को नहीं कहा.... इधर तेरे पिता भी महा शुध्दाचारी हो गए हैं, खुद का बनाया छोड़कर कुछ खाते नहीं। मेरा नू अच्छा लड़का है, तेरी तरह कट्टटर नहीं है.... तू इसे ज़बरदस्ती बाँधकर रखना चाहता है?'

गोरा, "बिल्कुहल ठीक! मैं इसे बाँधकर ही रखूँगा। तुम जब तक उस ख्रिस्तान नौकरानी लछमिया को भगा नहीं देतीं तब तक तुम्हारे कमरे में खाना नहीं हो सकेगा!"

आनंदमई, "अरे गोरा, ऐसी बात तुझे ज़बान पर नहीं लानी चाहिए। हमेशा से तू उसके हाथ का बना खाता रहा है; उसी ने तुझे बचपन से पाल-पोसकर बड़ा किया है। अभी उस दिन तक उसके हाथ की बनाई चटनी के बिना तुझे खाना नहीं रुचता था। जब बचपन में तुझे माता निकली थी तब लछमिया ने ही तेरी सेवा करके तुझे बचाया, वह मैं कभी नहीं भूल सकूँगी।"

गोरा, "उसे पेंशन दे दो, ज़मीन खरीद दो, घर बनवा दो, जो चाहो कर दो.... किंतु उसे और नहीं रखा जा सकता, माँ!"

आनंदमई, "गोरा, तू समझता है, पैसा देकर ही सब ऋण चुकता हो जाते हैं! वह ज़मीन भी नहीं चाहती, घर नहीं चाहती; तुझे नहीं देख पाएगी तो मर जाएगी।"

गोरा, "तुम्हारी जैसी मर्ज़ी.... रखे रहो उसे! पर वीनू तुम्हारे कमरे में नहीं खा सकेगा। जो नियम है वह मानना ही होगा, उससे इधर-उधर किसी तरह नहीं हुआ जा सकता। माँ, तुम इतने बड़े अध्यारपक वंश की हो, तुम जो आचार का पालन नहीं करतीं यह.... "

आनंदमई, "रे, पहले तेरी माँ आचार मानकर ही चलती थी; इसी के लिए उसे कितने आँसू बहाने पड़े.... तब तू कहाँ था? रोज़ शिव की प्रतिष्ठा करके पूजा करने बैठती थी और तेरे पिता उठाकर सब फेंक देते थे! उन दिनों अपरिचित ब्राह्मण के हाथ का खाते भी मुझे घृणा होती थी। उन दिनों हर जगह रेल नहीं जाती थी.... बैलगाड़ी में, डाकगाड़ी में, पालकी में, ऊँट की सवारी में कितने ही दिन मैंने उपवास में काटे! क्या सहज ही तुम्हारे पिता मेरा आचार भंग कर सके? वह सब जगह मुझको साथ लेकर घूमते-फिरते थे, इसीलिए उनके साहब-अफसर उनसे खुश थे, और उनकी तनख्वाह भी बढ़ती गई.... इसीलिए उन्हें बहुत दिनों तक एक ही जगह रहने दिया जाता, कोई बदली करना न चाहता। अब तो बुढ़ापे में नौकरी से छुट्टी पाकर बहुत-सा पैसा जमा करके सहसा वह बड़े आचारवान हो उठे हैं। किंतु मुझसे वह नहीं होगा। मेरी सात पीढ़ी के संस्कार एक-एक करके उखाड़ फेंके गए.... अब क्या कह देने भर से ही फिर जम जाएँगे?"

गोरा, "अच्छा, पिछली पीढ़ियों की बात तो छोड़ो.... वे लोग आपत्ति करने आने वाले नहीं, किंतु हम लोगों की खातिर तुम्हें कुछ बातें मानकर ही चलना होगा। शास्त्र की मर्यादा नहीं रखता तो न सही, स्नेह का मान तो रखना होगा।"

आनंदमई, "तू मुझे इतना क्या समझा रहा है? मेरे मन में क्या होता है वह मैं ही जानती हूँ। यदि मेरे कारण स्वामी और पुत्र को पग-पग पर मुश्किल ही होने लगी तो मुझे क्या सुख मिलेगा? किंतु तुझे गोद लेते ही मैंने आचार को बहा दिया था। यह तू जानता है? छोटे बच्चे को छाती से लगाकर ही समझ में आता है कि दुनिया में जात लेकर काई नहीं जन्मता। जिस दिन यह बात मेरी समझ में आ गई, उसी दिन से मैंने यह निश्चित रूप से जान लिया कि यदि मैं ख्रिस्तान या छोटी जात कहकर किसी से घृणा करूँगी तो ईश्वर तुझे भी मुझसे छीन लेंगे। तू मेरी गोद भरकर मेरे घर में प्रकाश किए रहे, तो मैं दुनिया की किसी भी जात के लोगों के हाथ का पानी पी लूँगी।"

विनय के मन में आज आनंदमई की बात सुनकर हठात् एक धुँधले संदेह का आभास हुआ। एक बार उसने आनंदमई के और एक बार गोरा के मुँह की ओर देखा; किंतु फिर तत्क्षण ही तर्क का भाव मन से निकाल दिया।

गोरा ने कहा, "माँ, तुम्हारा तर्क ठीक समझ में नहीं आया। जो लोग आचार-विचार करते हैं और शास्त्र मानकर चलते हैं उनके घर में भी तो बच्चे बने रहते हैं। तुम्हारे लिए ही ईश्वर अलग कानून बनाएँगे, ऐसी बात तुम्हारे मन में क्यों आई?"

आनंदमई, "जिसने मुझे तुम्हें दिया उसी ने ऐसी बुध्दि भी दी, इसका मैं क्या करूँ? इसमें मेरा कोई बस नहीं। किंतु पगले, तेरा पागलपन देखकर मैं हूँसू या रोऊँ, कुछ समझ में नहीं। खैर, वह सब बात जाने दो! तो विनय मेरे कमरे में नहीं खाएगा?"

गोरा, "उसे तो मौका मिलने की देर है.... अभी दौड़ेगा। वह ब्राह्मण का लड़का है, दो टुकड़े मिठाई देकर यह बात उसे भुला देने से नहीं चलेगा। उसे बहुत त्याग करना होगा, प्रवृत्ति को दबाना होगा तभी वह अपने जन्म के गौरव की रक्षा कर सकेगा। लेकिन माँ, तुम बुरा मत मानना.... मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।"

आनंदमई, "बुरा क्यों मानूँगी? तू जो कर रहा है जानकर नहीं कर रहा है, यह मैं तुझे बताए देती हूँ। मेरे मन में यही क्लेश रह गया कि तुझे मैंने आदमी तो बनाया किंतु.... खैर, छोड़ इसे। तू जिसे धर्म कहता फिरता है उसे मैं नहीं मान सकूँगी। तू मेरे कमरे में मेरे हाथ का नहीं खाएगा, न सही.... किंतु तुझे दोनों बेला देखती रह सकूँ यही मेरी इच्छा है.... विनय बेटा, तुम ऐसे उदास न होओ.... तुम्हारा मन कोमल है, तुम सोच रहे हो कि मुझे चोट पहुँची, लेकिन ऐसा नहीं है, बेटा! फिर किसी दिन न्यौता देकर किसी अच्छे ब्राह्मण के हाथ से बना तुम्हें खिलवा दूँगी.... उसमें अड़चन कौन-सी है! मैं ढीठ हूँ, लछमिया के हाथ का पानी पीऊँगी, यह मैं सभी से कहे देती हूँ।"

गोरा की माँ नीचे चली गईं। कुछ देर विनय चुप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "गोरा, यह तो कुछ ज्यादती हो रही है।"

गोरा, "किसकी ज्यादती?"

विनय, "तुम्हारी।"

गोरा "रत्ती-भर भी नहीं। जिसकी जो सीमा है उसे ठीक मानते हुए ही मैं चलना चाहता हूँ। छुआछूत के मामले में सुई की नोक-भर हटने से भी अंत में कुछ बाकी नहीं रहेगा।

विनय, "किंतु माँ जो है।"

गोरा, "माँ किसे कहते हैं यह मैं जानता हूँ। उसको मुझे बताने की ज़रूरत नहीं है। मेरी माँ-जैसी माँएँ कितनी ही होंगी! किंतु आचार को न मानना शुरू करूँ तो शायद एक दिन माँ को भी नहीं मानूँगा। देखो विनय, एक बात तुम्हें बताता हूँ, याद रखो! हृदय बड़ी उत्तम चीज़ है, किंतु सबसे उत्तम नहीं है।"

थोड़ी देर बाद विनय कुछ झिझकता हुआ बोला, "देखो गोरा, आज माँ की बात सुनकर मेरे मन में एक हलचल-सी मच गई है। मुझे लगता है माँ के मन में कोई बात है जो वह हमें समझा नहीं पा रही हैं, इसी से कष्ट पा रही हैं।"

अधीर होकर गोरा ने कहा, "अरे विनय, कल्पना को इतनी ढील मत दो.... इससे केवल समय नष्ट होता है और हाथ कुछ नहीं आता।"

विनय, "तुम दुनिया की किसी चीज़ की ओर कभी सीधी तरह देखते ही नहीं; तभी जो तुम्हें नज़र नहीं पड़ता उसी को तुम कल्पना कहकर उड़ा देना चाहते हो! किंतु मैं तुमसे कहता हूँ, मैंने कई बार देखा है, मानो माँ किसी बात को लेकर सोच रही हैं.... किसी बात को ठीक तरह सुलझा नहीं पा रही हैं, और इसीलिए उनके मन में एक घुटन है। गोरा, उनकी बात तुम्हें ज़रा ध्याान देकर सुननी चाहिए।"

गोरा, "ध्यान देकर जितना सुना जा सकता है उतना तो सुनता हूँ। उससे अधिक सुनने की कोशिश करने में गलत सुनने की आशंका रहती है। इसलिए उसकी कोशिश नहीं करता।"

सिध्दांत के रूप में जैसे कोई बात मान्य होती है, मनुष्यों पर प्रयोग करते उसे सदा उसी निश्चित भाव से नहीं माना जा सकता। कम-से-कम विनय जैसे लोगों के लिए यह असंभव है। विनय की चंचल-वृत्ति बहुत प्रबल है। इसीलिए बहस के समय एक सिध्दांत का वह बड़ी प्रबलता से समर्थन करता है, किंतु व्यवहार के समय मनुष्य को सिध्दांत से ऊपर माने बिना नहीं रह सकता। यहाँ तक कि गोरा द्वारा प्रचारित जो भी सिध्दांत उसने स्वीकार किए हैं उनमें से कितने स्वयं के सिध्दांत के कारण और कितने गोरा के प्रति अपने अनन्य स्नेह के दबाव से, यह कहना कठिन हैं

गोरा के घर से बाहर आ, अपने घर लौटते समय बरसाती साँझ में वह कीचड़ से बचता हुआ धीरे-धीरे चला जा रहा था, इस समय उसके मन में सिध्दांत और मनुष्य के बीच एक द्वंद्व छिड़ा हुआ था।

आज के ज़माने में तरह-तरह के प्रकट और अप्रकट आघातों से आत्मरक्षा करने के लिए समाज को खान-पान और छुआ-छूत के सभी मामलों में विशेष रूप से सतर्क रहना होगा, यह सिध्दांत विनय ने गोरा

के मुँह से सुनकर सहज ही स्वीकार कर लिया है और इसे लेकर विरोधियों के साथ बहस भी की है। वह कहता रहा है, किले को चारों ओर से घेरकर जब शत्रु आक्रमण कर रहा हो तब किले के प्रत्येक गली-द्वार-झरोखे, प्रत्येक सूराख को बंद करके प्राण-पण से उसकी रक्षा करने को उदारता की कमी नहीं कहा जा सकता।

किंतु गोरा ने आज जो आनंदमई के कमरे में उसके खाने का निषेध कर दिया, इसकी पीड़ा उसे भीतर-ही-भीतर सालने लगी।

किंतु गोरा ने आज जो आनंदमई के कमरे में उसके खाने का निषेध कर दिया, इसकी पीड़ा उसे भीतर-ही-भीतर सालने लगी।

विनय के पिता नहीं थे। माँ भी बचपन में छोड़ गई थीं। गाँव में चाचा हैं। बचपन से ही पढ़ाई के लिए विनय कलकत्ता के इस घर में अकेला रहता हुआ बड़ा हुआ है। गोरा के साथ मैत्री के कारण जब से विनय ने आनंदमई को जाना है, उसी दिन से वह उन्हें माँ कहता आया है। कितनी बार उनके यहाँ जाकर उसने छीना-झपटी और ऊधम मचाते हुए खाया है; खाना परोसने में गोरा के साथ आनंदमई पक्षपात करती हैं, यह उलाहना देकर कितनी बार उसने झूठ-मूठ अपनी ईष्या प्रकट की है। दो-चार दिन विनय के न आने से आनंदमई कितनी बेचैनी हो उठती है, विनय को पास बिठाकर खिलाने की आश में कितनी बार उनकी सभा टूटने की प्रतीक्षा करती हुई बैठी रहती हैं, यह सब विनय जानता है। वही विनय आज सामाजिक निंदा के कारण आनंदमई के कमरे में कुछ खा न सकेगा, इसे क्या आनंदमई सह सकेंगी.... या विनय भी सह सह पाएगा?

आगे से अच्छा बाहमन के हाथ का ही मुझे खिलाएँगी, अपने हाथ का अब कभी नहीं खिलाएँगी.... यह बात हँसकर ही माँ कह गईं, किंतु यह बात तो भयंकर व्यथा की है। इसी बात पर सोच-विचार करता हुआ विनय किसी तरह घर पहुँचा।

सूने कमरे में अंधेरा फैला था। चारों ओर कागज़ और किताबें अस्तव्यस्त बिखरी थीं। दियासलाई से विनय ने तेल का दीया जलाया.... दीवट पर बैरे की कारीगरी के अनेक चिद्द थे। जो सफेद चादर से ढँकी हुई लिखने की मेज़ थी उस पर कई जगह स्याही और तेल के दाग थे। कमरे में आज जैसे उसके प्राण सहसा छटपटा उठे। किसी के संग और स्नेह की कमी उसकी छाती पर बोझ-सा जान पड़ने लगी। देश का उध्दार, समाज की रक्षा इत्यादि कर्तव्यों को वह किसी तरह भी स्पष्ट और सत्य करके अपने सामने नहीं खड़ा कर सक.... इनसे भी कहीं अधिक सत्य वह अनपहचाना पाखी है जो एक दिन सावन की उज्ज्वल सुंदर सुबह में पिंजरे के पास तक आकर पिंजरा छोड़कर चला गया है। किंतु उस पाखी की बात को विनय किसी तरह भी मन में जगह नहीं देगा, किसी तरह नहीं। इसीलिए, मन को ढाढ़स देने के लिए, आनंदमई के जिस कमरे से उसे गोरा ने लौटा दिया, उसी कमरे का चित्र वह मन पर आँकने लगा।

साफ-सुथरी पच्चीकारी किया फर्श मानो झिलमिला रहा है; एक तरफ तख्त पर सफेद राजहंस के पंख-सा कोमल स्वच्छ बिछौना है, उसके पास ही एक छोटी चौकी पर अरंडी के तेल की ढिबरी अब तक जला दी गई होगी। माँ निश्चय ही रंग-बिरंगे धागे लिए ढिबरी के पास नीचे झुककर फूल काढ़ रही होंगी। नीचे फर्श पर बैठी लछमिनिया अपने अजीब उच्चारण वाली बंगला में बकवास करती जा रही होगी, और माँ उसका अधिकांश अनसुना करती जा रही होंगी। जब भी माँ के मन को कोई चोट पहुँचती है वह कढ़ाई लेकर बैठ जाती है। विनय अपने मन की आँखों को उनके उसी काम में लगे स्तब्ध चेहरे पर स्थिर करने लगा। मन-ही-मन वह बोला, इसी चेहरे की स्नेह-दीप्ति मेरे मन की सारी उलझन से मेरी रक्षा करे.... यही चेहरा मेरी मातृभूमि की प्रतिमा हो जाए, मुझे कर्तव्य की प्रेरणा दे और कर्तव्य-पथ पर दृढ़ रखे.... उसने मन-ही-मन एक बार 'माँ कहकर उन्हें पुकारा और कहा, "तुम्हारा अन्न मेरे लिए अमृत नहीं है, यह बात मैं किसी भी शास्त्र के प्रमाण से कभी नहीं मानूँगा।"

सूने कमरे में दीवार घड़ी की टिक्-टिक् गूँजने लगी। वहाँ बैठना विनय के लिए असह्य हो उठा। दीवट के पास दीवार पर एक छिपकली पतंगों की ओर लपक रही थी, कुछ देर विनय उसकी ओर देखते-देखते उठ खड़ा हुआ और छाता उठाकर बाहर निकल पड़ा।

वह क्या करने घर से निकला है, उसके मन में यह स्प्ष्ट नहीं था। शायद आनंदमई के पास ही लौट जाएगा, कुछ ऐसा ही उसका भाव था। किंतु न जाने कैसे अचानक

उसके मन में आ गया-आज रविवार है, आज ब्रह्म-सभा में केशव बाबू का व्याख्यान सुना जाए-यह बात मन में आते ही दुविधा छोड़ विनय तेज़ी से उधर चलने लगा। व्याख्यान सुनने का समय अधिक नहीं बचा है, वह जानता था, फिर भी उसका निश्चय विचलित नहीं हुआ।

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय